

आदिवासी स्त्री : अस्मिता का प्रश्न

डॉ० अपर्णा पाण्डेय*

आदिवासी शब्द सुनते ही, मस्तिष्क में एक छवि उभरती है, असभ्य, अनपढ़, गँवार व्यक्ति की, जो तथाकथित सभ्य समाज का हिस्सा बनने योग्य नहीं है। यह अवधारणा सामान्यतया पूरे आदिवासी समाज के लिए है। एक तो वैसे ही सम्पूर्ण स्त्री जाति अपनी अस्मिता, अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रतिरोध कर रही है, संघर्ष कर रही है, उसमें यदि आदिवासी स्त्री की स्थिति की बात करूं, तो यह संघर्ष दोहरा हो जाता है। कई मायनों में आदिवासी समाज अशिक्षित या अल्पशिक्षित होते हुए भी, सभ्य, शिक्षित समाज से ज्यादा उन्नत है, क्योंकि वहां कन्या भ्रुण हत्या नहीं की जाती, बल्कि कन्या जन्म उनके लिए समृद्धि का द्योतक होता है, वो चाहती है कि उनकी पहली संतान कन्या ही हो, ताकि वो आने वाले समय में अपनी माँ का ख्याल रखे व उसके बाद आने वाले भाई-बहनों के पालन-पोषण में भी माँ का सहयोग करे। कारण चाहे जो भी हो लेकिन इस पक्ष में तो वे सुशिक्षित, सभ्य सभा से उन्नत हुए ही।

दूसरे उनमें दहेज प्रथा नहीं है, बल्कि वर पक्ष ही कन्या ढूँढते हैं, ऊपर से दहेज के रूप में अच्छी खासी रकम भी देते हैं, मैं ये नहीं कहती कि स्त्री दहेज ले तो ये सही है, परन्तु चूंकि स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकार नहीं है, तो यह कहीं न कहीं उनमें सुरक्षा का भाव तो जगाता ही होगा।

मध्यवर्गीय समाज में स्त्रियों के लिए बहुत सारी वर्जनाएं हैं। उनकी परिधि निर्धारित कर दी जाती है, उनसे ही पैदा पुरुषों के द्वारा, लेकिन आदिवासी स्त्री इस प्रकार की वर्जनाओं से मुक्त है, वह पुरुष की सहभागी है, सभी स्तरों पर बावजूद इसके उसे सम्पत्ति का अधिकार नहीं है। आदिवासी स्त्री का शारीरिक व मानसिक दोहन अक्सर कर गैर आदिवासी पुरुषों के द्वारा ही होता रहा है, और हो रहा है। उनकी अपनी एक दुनिया थी, जिसमें प्रकृति उनकी संरक्षक थी, उनके

अपने कायदे, कानून थे और वो प्रसन्न थे। इतिहास साक्षी है, कि जनजातीय संस्कृति का आधारतत्त्व शहरीकरण और आधुनिकता के प्रभाव से अपनी पहचान खोता जा रहा है। जनजातीय समाज धीरे-धीरे अपनी ही संस्कृति की परम्पराओं से कटता जा रहा है।

आवश्यकता तो है कि उन तक शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी आधारभूत सुविधाएं जरूर पहुंचायी जाएं, लेकिन षडयंत्र कर उन्हें उनकी ही जमीन से बेदखल ना किया जाय। स्त्री जबकि पितृसत्तात्मक संरचना से बाहर आ रही है। फिर आदिवासी वर्ग की औरतों को आज भी पुरुष की सामंती मानसिकता से बाहर नहीं आने दिया जा रहा है। पुरुष सत्ता ने हमेशा से स्त्री को एक सांचे में ढालने की कोशिश की है। उसमें स्त्री पर वर्चस्व की निरंतरता को बनाए रखा है। इस संदर्भ में यदि यथार्थ चित्रण कर दिया जाय तो निष्कर्ष शायद बहुत सहज करने वाला नहीं होगा। आदिवासी स्त्री केवल गैर आदिवासी पुरुष के द्वारा ही नहीं अपितु व्यवस्था के हर तंत्र द्वारा बलात्कृत होने के लिए अभिशप्त है। समाज की मध्यवर्गीय मानसिकता ने स्त्री के शील को एक ऐसा मामला बना दिया है, जिसके बाद उसका जीवन ही न के बराबर रह जाता है। भारतीय पुरुष चेतना में एक पुरुष बलात्कार करके अपने आपको वीर मान सकता है। उसके लिए यह कृत शर्म या ग्लानि का नहीं अपितु उनके पुरुषत्व का प्रतीक है। ऐसे ही मानसिकता वाले आदिवासी स्त्री को कमजोर मान उसे अपना शिकार बनाते हैं। ऐसी घटनाएं ऐसे ही दमित समाज की देन रही हैं। अन्यथा आदिवासी समाजों में बलात्कार कम से कम होते हैं, और जब होते हैं, न तो कोई स्त्री आत्महत्या करती करती है और न ही यह मान लिया जाता है कि उसका सर्वस्व लुट गया है।¹

ऐसे उदार समाज के सम्पर्क में आने वाला गैर आदिवासी उनकी उदारता और विश्वास का गला घोटते हैं। आदिवासी और दलित औरतों के साथ अर्धिकांशतः गैर दलित आदिवासी ही बलात्कारी साबित होते हैं अन्यथा ऐसी घटनाएं उनके समाज में न के बराबर होती हैं। इस अर्थ में मुख्य धारा व कथित सभ्य समाज से कई पायदान ऊपर ठहरती है—आदिवासी सोच! वे न दमित हैं न किसी शील के टेबू के शिकार हैं।

*पी०डी०एफ० काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

इस भूमण्डलीकरण के दौर में लगातार विकास के नाम पर हो रहे बनों के दोहन से, हमने उन आदिवासियों से उनकी रोटी छीन ली और बदले में दिया तो गरीबी भुखमरी। जिससे उन्हें उनकी जमीन छोड़नी पड़ती है, उन औरतों को बिकना पड़ता है, कभी बाजार में तो कभी कामगार के रूप में, लेकिन ऐसे में उनकी हालत सुधरती नहीं, बल्कि बद से बदतर हो जाती है। हर पायदान पर उनका शोषण होता है।

जो लागे उन्हें अच्छी कमाई व अच्छे जीवन का लोभ देकर शहर ले आते हैं, फिर यहां एजेन्सी उन्हें बड़े घरों में नौकरानी बना कर भेजती है। वहां उनका शारीरिक, मानसिक शोषण तो होता ही है, जिस धन की आशा में जिस कर्जमुक्ति के सपने के कारण वो ये सब सहती रहती हैं, मरती रहती हैं, वो एजेन्सी वाले अपने फीस के रूप में उनकी कमाई का मोटा हिस्सा हड़प जाते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण विषय है कि आदिवासी महिला के श्रम कोश्रमिकों की श्रेणी में नहीं रखा जाता। अभिप्राय है कि सांगठनिक श्रमिक की श्रेणी में आदिवासी महिला आती है। अनौपचारिक मजदूर की श्रेणी में बहुत बड़ा मजदूर समुदाय शामिल है, जिनकी संख्या देश की कुल आबादी का आठ प्रतिशत है, जिसमें आधी आबादी महिलाओं की है। एक बात और है कि आदिवासी समाज महिला को काम पर भेजने से मनाही नहीं करता। उनके यहां लड़का-लड़की दोनों कमा सकते हैं। इसीलिए लड़कियों के जन्म से पूर्व या जन्म के बाद मारने की प्रथा नहीं है।

आदिवासियों के पलायन औद्योगिकीकरण के कारण विस्थापन और पुर्नस्थापन आदि की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए कुछ साल पहले आदिवासियों की चिन्ता के लिए एक अलग मंत्रालय बनाया गया। इस मंत्रालय ने नई आदिवासी नीति बनाई। सरकार के स्तर पर भी अधिक कानूनी कसावट की जरूरत है।

इन सारी बातों का सरोकार यही है कि यदि हम जनजातीय महिलाओं को मुख्य धारा से जोड़ना चाहते हैं, तो स्वस्थ मानसिकता के साथ मुख्य धारा का बुद्धिजीवी वर्ग सकारात्मकता के साथ उन्हें मौलिक अधिकारों के प्रति सचेत कर सकता है, एवं उन्हें वो उपलब्ध कराने में उनकी मदद कर सकता है, साथ ही उन महिलाओं को भी अपनी शक्ति पहचानकर सजगता से आगे बढ़ता होगा।

सन्दर्भ ग्रंथ –

- (1) राजकिशोर – स्त्री के लिए जगह 120 वाणी प्रकाशन
- (2) डा० रमेश चन्द्र मीणा – आदिवासी विमर्श- 65 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
- (3) अरविन्द जैन – 27 'औरत अस्तित्व और अस्मिता' सारांश प्रकाशन, 2000 दिल्ली।